उपसंहार

उपसंहार

वाद्य का संगीत में महत्वपूर्ण स्थान हैं। भारतवर्ष में वाद्यों का प्रयोग केवल मनोरंजन के लिए ही नही अपितु प्रभु की उपासना के लिए भी किया जाता है। वाद्यो बिना संगीत की कल्पना भी नही का जा सकती। भारतीय वाद्यो का एक लम्बा इतिहास है। मानव के विकास के साथ–साथ वाद्यों का भी विकास होता रहा।

भगवन्त कौर के अनुसार वाद्यों का अविष्कार काण्ठ संगीत को आश्रय देने के लिए, गीत की संगति के लिए, अखण्ड संगीतमयी वातावरण बनाने के लिए, गायक को गीत में विश्राम देने के लिए, गीत रचना मे रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए हुए।

वाद्य शब्द संस्कृत भाषा के वद् धातु से णिच और यत् प्रत्यय के योग से बना है। जिसका अर्थ बोलना होता है।

भारतीय संगीत में वाद्यो का इतिहास प्राचीन समय से मिलता है। वाद्यों का सम्बन्ध देवी देवताओं से भी माना जाता है भगवान शिव के नृत्य के समय देवी लक्ष्मी द्वारा गायन, देवी सरस्वती द्वारा वीणा वादन, इन्द्र द्वारा वेणु ब्रहमा द्वारा करताल वादन का उल्लेख पुराणों में मिलता है। यही नहीं तत वाद्य का सम्बन्ध देवताओं से सुषिर वाद्य का सम्बन्ध गन्धर्वों से, अवनद्ध वाद्य का सम्बन्ध राक्षसों से तथा घन वाद्य का सम्बन्ध किन्नरों से माना जाता हैं।

संगीत विद्वानों ने समस्त वाद्यो को व्यवस्थित रूप से वर्गीकृत किया। भारतीय संगीत में वाद्यों को वर्गीकृत की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है।

आचार्य भरत से लेकर आधुनिक काल तक वाद्यों को चार वर्णो में वर्गीकृत किया जाता रहा है।

1– तत् 2– सुषिर 3– घन 4– अवनद्ध।

इन समस्त वर्ग में घन वर्ग के वाद्यों का सर्वप्रथम प्रयोग हुआ इसमे सन्देह नही। मानव को सर्वप्रथम लय का ज्ञान हुआ था। घन तथा अवनद्ध लय प्रधान वाद्य है। ठोस धातु का होने के कारण घन एक मात्र वाद्य है। जिसके स्वर में परिवर्तन नही होता।

प्रारम्भिक अवनद्ध वाद्य अपने सरलतम रूप में प्रचलित थे। प्रारम्भ में मानव आदिम अवस्था में था। जानवरो को मारकर खाता था जानवरो की खाल का उपयोग अपने शरीर को ढ़कने गर्म रखने के लिए करता था।

डॉ0 रेखा सेठ के अनुसार– उस चर्म को धारण योग्य बनाने के लिए लकड़ी या किसी कड़ी चीज से पीटता होगा। जिसके फलस्वरूप गम्भीर नाद उत्पन्न हुआ होगा, जिससे प्रेरणा प्राप्त करके अपनी कल्पनानुसार अवनद्ध वाद्य का निर्माण किया। प्रारम्भिक अवनद्ध वाद्य अपने सरलतम रूप में प्रचलित थें। जैसे– भूमि दुन्दुभि जिसे भूमि के अन्दर बहुत बड़ा गड्ढा खोदकर किसी जानकार के चमड़े से आच्छादित करके बैल की पूँछ से प्रहार कर बजाया जाता था।

सबसे प्रचीन अवनद्ध वाद्य डमरू माना गया है अवनद्ध का सामान्य अर्थ चारों ओर बधा हुआ होता है। तत् एवं अवनद्ध वाद्यों के पश्चात् सुषिर तथा तत् वाद्यों का प्रादुर्भाव हुआ। जैसा कि मानव को सर्वप्रथम लय का ज्ञान हुआ था। इस प्रकार लय ज्ञान के पश्चात ही विभिन्न वाद्य धीरे–धीरे विकसित हुये। सभी वाद्यों की उत्पत्ति का आधार कहीं न कहीं प्रकृति को माना गया है। मानव जाति के विकास के साथ–साथ ही वाद्यों का विकास हुआ।

इस प्रकार संगीत विद्वानों ने समस्त वाद्यों को चार वर्ग में बाटा है। इस वर्गीकरण में सभी वाद्य समाहित हो जाते है किन्तु आवश्यकता अविष्कार की जननी होती है संगीत की आवश्यकता के फलस्वरूप कई और वाद्य निर्मित हुए जो इस प्राचीन वर्गीकरण में उपयुक्त नही बैठते।

भालचन्द्र राव मराठे के अनुसारः– प्राचीन काल का उपंग वाद्य ऐसा वाद्य था जिसके बनावट में चमड़ा एवं तार दोनों का प्रयोग किया जाता था। इसके तालधारणा (लयधारणा) के लक्षण के आधार पर इसे अवनद्ध या ताल वाद्यो के वर्ग में शामिल किया गया। ''उपंग वाद्य को उसकी रचना के आधार पर अलग वर्ग में रखा जाना आवश्यक प्रतीत होता है। जलतरंग भी ऐसा वाद्य है जो घन वाद्य में उपयुक्त नही

बैठता है। बनावट की दृष्टि से इसे घन वाद्यों की श्रेणी मे रखा जा सकता है किन्तु जलतरंग में स्वर वाद्यों की तरह राग, गत, गीत आदि का वादन किया जाता है। इस दृष्टि से इसे घन वाद्यों की श्रेणी में रखना उचित नहीं प्रतीत पड़ता। संगीत विद्वानो ने इस नये वर्ग को तरंग का नाम दिया।

इस प्रकार वाद्यो के छः वर्ग हो गये।

(1) तत वाद्य **(2) अवनद्ध** **(3) ततानद्ध वाद्य**
(4) घन **(5) सुषिर** **(6) तंरगवाद्य।**

आधुनिक युग वैज्ञानिक युग है विज्ञान के प्रभाव के कोई भी अछूता नही है, आधुनिक समय में अनेक इलेक्ट्रानिक वाद्य आ गये जो विद्युत की सहायता से चलते है। जैसे– इलेक्ट्रानिक तानपुरा, इलेक्ट्रानिक सुर–पेटि, सारंग कॉन्सरो, सारंग मैलोडी तालोमीटर आदि। ये वाद्य वर्गीकरण के किसी भी वर्ग में उपयुक्त नही बैठते। इन वाद्यों के लिए एक नया वर्ग होना चाहिए। जिसे इलेक्ट्रानिक वाद्य यंत्र नाम दिया जा सकता है। इस प्रकार यह वाद्यो के वर्गीकरण का यह अन्तिम रूप नही कह सकते है।

आगे भी संगीत की आवश्यकता के फलस्वरूप कई ऐसे वाद्य उत्पन्न होगे जिनके लिए वाद्य वर्गीकरण का और नया वर्ग बनाना आवश्यक होगा।

वाद्यो का इतिहास हमें श्रृंखलाबद्ध तरीके से मिलता है। वाद्यों की उत्पत्ति का आधार प्रकृति है वैदिक काल से ही अवनद्ध वाद्यों का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में दुन्दुभि, गर्गर, आडम्बर वाद्य का उल्लेख मिलता है।

आचार्य भरत ने नाट्यशास्त्र में 33वे अध्याय में अवनद्ध वाद्यो का वर्णन किया है भरतमुनि के युग में त्रिपुष्कर प्रमुख अवनद्ध वाद्य था। त्रिपुष्कर के तीन अंग थे आंकिक, उर्ध्वक एवं आलिंग्य। मृदंग को कई स्थानों पर पुष्करत्रय कहा गया है। भरत ने नाट्यशास्त्र में मृदंग का अलग से वर्णन न करके मृदंग का वर्णन त्रिपुष्कर के रूप मे ही किया है।

मृदंग दो शब्द मृत् + अंग से बना है मृत मिट्टी और अंग शरीर अर्थात मिट्टी से बना वाद्य मृदंग कहलाया।

आचार्य भरत ने मृदंग के साथ–साथ प्रणव तथा दर्दुर को स्वाति मुनि के द्वारा विश्वकर्मा की सहायता से बना हुआ माना है। मृदंग के बाद पटह, प्रणव को सर्वाधिक महत्व दिया।

महर्षि भरत ने प्रत्यंक वाद्यो में झल्लरी, पटह, भेरी, झंझा, दुन्दुभि, डिण्डिम आदि की गणना की है।

शारंगदेव के काल में मृदंग का स्थान मर्दल, मुरज ने लिया था। संगीतरत्नाकर मे निसार, करटा, ढवस, ढक्का, रूजा, डक्कली, सेल्लुका, त्रिवली का भी वर्णन मिलता है।

वर्तमान समय में अवनद्ध वाद्यों की चर्चा करे तो केवल तबला पखावज की मुख्य अवनद्ध वाद्य प्रचलित है। आचार्य भरतकालीन प्रचलित त्रिपुष्कर वाद्य के तीन अंग आंकिक, आलिंग्य, उर्ध्वक थे। आंकिक यह वाद्य लेटाकर बजाया जाता था इस वाद्य को दो मुख थे। कालान्तर मे यही वाद्य आगे चलकर कुछ परिवर्तन के साथ मृदंग, पखावज के रूप में प्रचलित हुआ।

संगीत विद्वानों के अनुसार त्रिपुष्कर के खडे रखकर बजने वाले भाग उर्ध्वक आलिंग्य कुछ परिवर्तन के पश्चात् तबला जोडी के रूप मे प्रसिद्ध हुये।

इस प्रकार वाद्यो का इतिहास हमे क्रमबद्ध तरीके से मिलता है। प्रारम्भिक वाद्य अपनी सरल अवस्था मे थे। धीरे–धीरे वाद्यो का विकास होता गया। वर्तमान समय मे प्रचलित वाद्यो का आधार कही न कही प्राचीन वाद्य ही हैं। आधुनिक समय के जितने भी अवनद्ध वाद्य है उनका आधार सम्बन्ध प्राचीन वाद्यों से ही है।

संगीत में पखावज का इतिहास अत्यन्त प्राचीन नहीं है। प्राचीन संगीत ग्रन्थों में पखावज शब्द का कोई उल्लेख नही मिलता। 15वीं शताब्दी तक किसी भी संगीत पुस्तक या अन्य किसी भी स्थान पर पखावज को कोई भी उल्लेख नहीं मिलता। मध्यकालीन अष्टछाप कवियों की रचनाओं में पखावज शब्द का उल्लेख है।

डॉ0 सत्यभान शर्मा के अनुसार– मृदंग का अंग मिट्टी के बने होने के कारण स्थिर नही रह पाता था। जिसके कारण बाद में इसे काष्ठ का बनाया गया और तब इसका नाम पक्ष वाद्य अर्थात दोनों पक्षो यानि बगलों (बाजुओं) से बजाने वाला वाद्य रहा होगा और कालान्तर में भाषा विज्ञान के नियमानुसार क्रमशः इसका नाम पखावज हो गया होगा तथा–

पक्षवाद्य, पखाउज, पखावुज तथा पखावज–।

डॉ0 मनोहर भाल चन्द्रराव मराठे ने अपनी पुस्तक ताल वाद्य शास्त्र में लिखा है कि यह फारसी शब्द है। पखावज का अर्थ कई तरह से निकाला जाता हैं।

1– पख (मृदु) + आवाज जिस पर आसदार आवाज निकले।

2– पखावज – पखबाज का अपभ्रंश है जिसका अर्थ है पूरी पख (पूरी बाजू) के दम से बजाया जाने वाला।

अपने लेख में स्वामी पागलदास ने लिखा है– पखावज शब्द का प्रचलन इतना बढा कि मृदंग और पखावज को आज अलग–अलग रूपों में स्वीकार किया जाता है विशेष कर सरकारी अभिलेखो आकाशवाणी तथा अन्य संगीत संस्थाओं में शत प्रतिशत मृदंग को पखावज कहने और लिखने की प्रथा प्रचलित है। फिर भी पखावज वादको को जब उपाधि प्रदान की जाती है तो उन्हे पखावजाचार्य न कहकर मृंदगाचार्य कहकर ही सम्बोधित किया जाता है।

पखावज का विकास देवाश्रय राज्याश्रय दोनों स्थानों में समान रूप से हुआ।

वर्तमान समय में पखावज की लोकप्रियता में कुछ कमी आई है। इसके अनेक कारण है। सबसे प्रमुख एवं मुख्य कारण ध्रुपद धमार गायकी का कम गाया जाना है। वर्तमान समय में गायक कलाकार द्वारा ध्रुपद धमार गायन कम गाये जाते है। इसी कारण उसका साथी पखावज भी कम प्रयोग किया जाता है।

प्राचीन काल में मृदंग मिट्टी का बना होता था जो प्रायः टूट जाता था कालान्तर में मृदंग मिट्टी के स्थान पर लकड़ी का निर्मित होने लगा और मृदंग का प्रतिरूप पखावाज के रूप मे प्रकट हुआ।

पखावज पर अँगुलियो द्वारा आघात करने पर जो ध्वनि उत्पन्न होती है उसे वर्ण बोल या पाटाक्षर कहते है।

पखावज के वर्ण के विषय में संगीतज्ञों में मतभेद है। किसी ने दस तो किसी ने सात, सोलह, चार वर्णो का वर्णन किया है।

रामशंकर पागलदास के अनुसार मृदंग में ता, दी, ना, ते, टे, घ और क सात वर्णो को बजाया जाता है।

पखावज के विकास के साथ–साथ पखावज के विभिन्न ताल विकसित हो गये। डॉ0 मनोहर भालचन्द्र राव मराठे के अनुसार अवनद्ध वाद्यों के ऊपर ताल के ठेके का प्रारम्भ 13वीं, 14वीं सदी में ही हो गया था।

ग्वालियर नरेश राजा मानसिंह तोमर ने ध्रुवपद गायन शैली का निर्माण, प्रचार, प्रसार किया। ध्रुवपद, ओजपूर्ण गायन शैली है। ध्रुवपद के लिए उसके स्वरूपानुसार खुले बोल के ठेके प्रचार में आये। जिसे पखावज वादको ने अपने वादन अनुसार किया।

वर्तमान समय में संगीत ही एक ऐसी कला है। यहाँ घराना घरानेदार संगीत शब्द का उल्लेख मिलता है। घराना भारतीय संगीत की अमूल्य धरोहर है।

घराने के अन्तर्गत किसी विशेष गुरू के शिष्यों वंशजो का परिवार आता है जिन्होंने उस गुरू विशेष से शिक्षा प्राप्त किया है।

घराना प्राचीन काल से ही संगीत में किसी न किसी रूप में रहा है। किन्तु इसका स्वरूप थोड़ा भिन्न–भिन्न था। प्राचीन मध्यकाल में प्रचलित मत या वाणी को घराने का ही पर्याय माना जाता हैं, प्राचीन समय में भरतमत, शिवमत, हनुमन्तमत, नारदमत मध्ययुग में नौहर वाणी, डागुरवाणी, गोबरवाणी, खण्डरवाणी यह भी एक प्रकार के घराने ही थे।

घराने में परम्परा का विशेष स्थान है। सुशील कुमार चौबे के अनुसार घराने परम्परा के संकेत अथवा प्रतीक है और परम्परागत संगीत के प्रतिनिधि भी हैं। इसलिए प्रतिष्ठित घरानेदार गायक परम्परागत संगीत के स्तम्भ हैं और उसकी जिन्दा तस्वीरें अथवा जीवित चित्र हैं। सभी घराने मुगलकाल के अंतिम समय तक अस्तित्व में आया।

घराना शैली या रीति का दूसरा नाम है। घराना स्थिर तब होता है जब इस शैली का अनुसरण करने वाला शिष्यों का समूह हो घराने की शिक्षा में अनुशासन का बहुत महत्व है।

इस प्रकार एक नवीन घराना तब बनता है जब शिष्य परम्परगत शैली जो उन्होने अपने गुरू से सीखे उसमें स्वयं की कलात्मकता, सौन्दर्य विकसित कर अपनी शैली में नवीनता डालकर निखार लाता है जो उस घराने के बाकी शिष्य नही कर पाते। इसी नवीन शैली का निर्वाह जब अनेकों शिष्य करते है तब एक नवीन घराने की उत्पत्ति होती है।

भारतीय संगीत में पखावज के घराने का इतिहास 18वीं शदी से ही प्राप्त होता है। राग दर्पण में फकीरूल्लाह ने एक शतायु भगवानदास पखावजी होने का उल्लेख मिलता है। भगवानदास पखावजी को ही पखावज का आदि प्रमुख मानते है। संगीत विद्वान भगवानदास की परम्परा के लाला भवानीदीन को सभी पखावज के घराने एवं परम्पराओं का सूत्रधार मानते है।

पखावज के निम्न घराने एवं परम्पराये है। जावली घराना, ब्रज के वैष्णव सम्प्रदाय की परम्पराये, पंजाब घराना, कुदऊ सिंह घराना, नाना पानसे घराना, अवधी घराना, नाथद्वारा परम्परा, रायगढ़ की मृदंग परम्परा, ग्वालियर परम्परा, महाराष्ट्र की गुरव परम्परा एवं मंगलवेढ़ेकर घराना, बंगाल की परम्परा, गया की परम्परा एवं दरभंगा परम्परा प्रमुख मानी जाती है।

विभिन्न घरानों की पहचान उनके वादन शैली से ही होती है।

संगीत के क्षेत्र में कोई भी घराना अन्य घरानों से अपनी वादन शैली के आधार पर ही अलग घराना बनता है हर घराना अपनी वादन विशेषताओं के आधार पर ही पहचाना जाता है। वाद्य को बजाने की शैली विधि को बाज कहते है।

बाज शब्द केवल संगीत में घरानों की वादन शैली के लिए प्रयोग किया जाता है यह ऊर्दू भाषा का शब्द है।

बात अगर पखावज के संदर्भ में करे तो पखावज के वर्ण तो एक ही सभी घरानों में प्रयुक्त किये जाते है। किन्तु उनके वर्ण निकालने की विधि सभी घरानों में अलग–अलग है। साथ ही घरानों की कुछ मौलिक रचनायें भी होती है इन्ही सब विशेषताओं से पखावज के विभिन्न घराने बने।

नया बाज स्वयं निर्मित नही होता जब कोई विलक्षण वादक अपनी प्रतिभा से नई वादन शैली का निर्माण करता है और उसके शिष्य इन नवीन वादन शैली को अपनाते है तभी एक नये वादन शैली वा बाज का आरम्भ होता है।

हर घराने की अपनी–अपनी वादन विशेषता होती है। आज के समय, परिस्थिति का प्रभाव पखावज वादन पर भी पड़ा। गुरू से शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् शिष्य भी अपनी कला का प्रदर्शन करता है। इस लिए पखावज वादन में और नई कला विकसित हो गई है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है प्रारम्भिक वाद्य अपनी सरल अवस्था से धीरे–धीरे विकसित होते गये इस विकास के साथ कुछ विलुप्त हो गए कुछ अधिक विकसित होकर दूसरे वाद्यो का रूप ले लिये। वाद्यों के विकास के साथ विभिन्न वादन शैलियॉ एवं घराने भी विकसित हो गये। आज के पखावज वादक घरानों की सीमा में न बंधकर दूसरे घरानों की विशेषताओं को अपना रहे है। इस मिश्रण से पखावज वादन में नई रंगत आ गयी हैं साथ ही आज के समय में बहुत लम्बी आवर्तन की परन का वादन पखावज वादक बहुत कम करते है। साथ ही श्रोताओं की रूचि का भी ज्यादा ध्यान रखा जाता है। आज पखावज का वादन संगीत के सभी पक्षों में किया जा रहा है। पहले पखावज केवल मंदिरों, ध्रुपद धमार आदि विभिन्न विधिओं मे बजाया जाता है। किन्तु आज पखावज ध्रु पद धमार की सीमा तक सीमित नही है। इन विधिओं के अतिरिक्त लोकसंगीत, फिल्म संगीत फ्युजन म्यूजिक अन्य विधाओं में भी बजाया जा रहा है।